श्रीमद्भागवत के पंचगीत

श्रीमद्भागवत के पंचगीत

भूमिका

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

भावानुवादक

पं० भानुप्रतापाचार्य

१९८१

'सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

•

पहली बार : १९८१
मूल्य : चार रुपये

•

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

२५७

प्रकाशकीय

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख और शांति चाहता है, लेकिन दुर्भाग्य से अधिकांश व्यक्ति यह नहीं जानते कि सच्चा सुख और सच्ची शांति किस प्रकार प्राप्त हो सकती है। वे दुनिया की मोह-माया में फंसकर भटकते रहते हैं और इस प्रकार एक दिन उनकी जीवन-लीला समाप्त हो जाती है।

हमारे पुरातन ग्रंथ बताते हैं कि जीवन का वास्तविक धर्म क्या है और धर्म का मर्म क्या है। जो उस धर्म को और मर्म को समझ लेता है, उसकी जीवन-यात्रा बड़े आनन्द से सम्पन्न होती है।

भारतीय वाङ्मय में 'श्रीमद्भागवत' का अपूर्व स्थान है। उसमें भक्ति-रस की ऐसी धारा प्रवाहित है कि जो भी उस धारा में अवगाहन करता है, उसे बड़ी शीतलता अनुभव होती है। इसी महान् ग्रंथ के दशम स्कंध में वर्णित 'पंचगीत' तो भक्ति-रस से लबालब-भरे हैं। उनमें श्रीकृष्ण के प्रति व्रज की गोपियों के आंतरिक उद्गार, अलौकिक प्रेम तथा अनन्य भक्ति का इतना भावपूर्ण वर्णन है कि उसे पढ़कर पाठक विभोर हो उठता है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्रीमद्भागवत के व्याख्याता श्रीभानुप्रतापाचार्य-जी ने 'पंचगीत' के संबंध में अपने भाव और भावानुवाद दिये हैं। उसके पीछे मूल प्रेरणा क्या और किसकी रही, इसका उल्लेख उन्होंने अपने 'प्राक्कथन' में किया है।

लेखक का जन्म राजस्थान के सवाई माधोपुर के अंतर्गत बहरांवडा-कलाँ नामक ग्राम में विक्रम-संवत् १९९४ की कार्तिक शुक्ल २ को हुआ था। अपने माता-पिता से उन्हें सद्विचारों की पैतृक सम्पदा प्राप्त हुई और वह श्रीकृष्ण की क्रीड़ा-स्थली वृन्दाटवी में शिक्षा पाकर कुछ समय अध्यापन में संलग्न रहे और अब स्वतंत्र रूप से विभिन्न स्थानों में भगवद्-कथा सुनाकर लोकहित-साधन में लीन हैं।

श्रीमद्भागवत के रसिक पाठकों के लिए प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त प्रेरणादायक है, किन्तु आत्म-कल्याण के अभिलाषी पाठकों को भी इस पुस्तक में बहुत-कुछ उपयोगी समग्री प्राप्त होगी।

पुस्तक अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे, इसलिए इसका मूल्य कम-से-कम रखा गया है। आशा है, सभी वर्गों के पाठक इस कृति को चाव से पढ़ेंगे।

—मंत्री

दो शब्द

श्रीमद्भागवत-रसिक श्रीभानुप्रतापाचार्यजी ने दशम स्कन्ध के पाँच गोपीगीतों का भावानुवाद उपस्थित करके भक्तजनों का महान् कल्याण-साधन किया है। एक तो श्रीमद्भागवत स्वयं ही भगवान् का अनुग्रह-विग्रह है, दूसरे दशम स्कन्ध में वर्णित प्रत्येक श्रीकृष्णचरित्र भक्तजनों के लिए मधुमय और लास्यमय रस-विलास है। उनमें भी गोपियों के भावमय संगीत का तो कहना ही क्या है ! स्वयं भगवान् ने ही अपने हृद्गत परमानन्द-रस को अपनी वंशी के द्वारा गोपियों के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग में भरकर उनके माध्यम से उद्गीत संगीत-रस के रूप में स्वस्वरूपभूत आह्लाद का आस्वादन किया है।

लेखक ने इस दिव्य रस का साधारणीकरण करके भावुक भक्तजनों का जो उपकार किया है, तदर्थ हम उनको हृदय से शुभाशंसा प्रदान करते हैं और यह अभिलाषा करते हैं कि उनके द्वारा इस प्रकार के अन्य लोकोपकारी शुभ कार्य भी सम्पन्न हों।

— अखण्डानन्द सरस्वती

(स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती)

शुभाशंसा

अचिदविशेषितान् प्रलयसीमनि संसरतो जीवान् विलोक्याखिलकोटि-ब्रह्माण्डनायकः करुणावरुणालयो वारिदभासो जगन्निवासो भगवान् वासुदेवो दयमानमनाः करणकलेवरैर्जुष्टमतिदुर्लभं मानवशरीरं तदुद्धाराय स्वप्राप्त्यर्थञ्च प्रादात् । अथ चाचित्संसर्गजन्यं तमोहतुं सदसद्विवेकाय च वस्तुप्रकाशनार्थं प्रदीपमिव मानभूतं शास्त्रञ्च । तथापि शलभीभूतान् प्राणिनः संतरणाय नान्या काचनतरीः सुदृढा पुराणश्रेष्ठात्श्रीमद्भागवतादृते । तत्र च कर्ममिश्रितं भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-प्रतिपादनमिति नाम्नैव प्रतीयते । यद्यपि सम्पूर्णे तस्मिन्शास्त्रे भगवद्गुणानुवाद एव, तथापि विस्तरतः वात्सल्यजलधेःपरमकारुणिकस्य भगवतः गोपी-गीत श्रीकृष्णचन्द्रस्य चरित्रं दशम-स्कन्धे । तस्मिन्नेव स्कन्धे 'वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत, उद्धवगीत' पञ्च गीतकानि सद्यः भगवत्प्राप्त्युपायभूतानि उभयस्वरूपबोधकानि च अतिश्रेष्ठतराणि वर्तन्ते । परन्तु 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' इत्युक्तिप्रकारेण तेषां काठिन्यं सर्वजनदुर्लभत्वं च निरीक्ष्य श्रीभानुप्रतापाचार्येण सर्वजनसौलभ्यया हिन्दीभाषयाऽनूद्य महदुपकृतमिति मन्ये ।

अतस्तान् धन्यवाद-दान-पुरस्सरमाशास्महे यत् तदवलोकनेन 'गच्छतस्स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः' इत्युक्ति-वचनानुसारेण तद्दोषमनवलोकयन्तः तत्प्रयासं सफलीकरिष्यन्तीति दिक् ।

विदुषां वशंवदः

—(पं०) सदाशिवशास्त्री

शुभाशंसा

(हिन्दी-अनुवाद)

अगणित ब्राह्मांडों के नायक, करुणा के सागर, जलयुक्त मेघों-जैसी आभा वाले तथा सारी सृष्टि के एकमात्र आश्रय, भगवान् वासुदेव ने अज्ञान-रूपी अंधकार से भरे मार्ग में पद-पद पर ठोकरें खाते हुए अल्पज्ञ जीवों को उनके उद्धार के लिए—तथा मुख्य रूप से परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति के लिए—ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से युक्त यह दुर्लभ शरीर दिया है। सांसारिक विषयों के निरन्तर सेवन से उत्पन्न अंधकार को दूर करने आत्मा को सत्-असत् के विवेक में समर्थ और प्रत्येक वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के हेतु शास्त्र-रूपी दीप-ज्योति प्रज्वलित की है। तथापि मरणशील पतंगों की तरह प्राणियों के लिए दुस्तर संसार-सागर को सुख-पूर्वक पार करने के लिए पुराणों में श्रेष्ठ 'श्रीमद्भागवत' को छोड़कर दूसरी कोई सुदृढ़ नौका दिखायी नहीं देती।

श्रीमद्भागवत में कर्म-मिश्रित ज्ञान-भक्ति-वैराग्य की त्रिवेणी प्रवाहित है, जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट विदित होता है। यद्यपि सम्पूर्ण भागवत में सर्वत्र 'भगवद्गुणानुवाद' ही दिखायी पड़ता है, तथापि उसके दसवें स्कन्ध में वात्सल्य के जलधि, परम करुणाशील भगवान् वासुदेव का चरित्र विस्तार और विशेषता के साथ वर्णित है।

इसी दशम स्कन्ध में भगवद्-प्राप्ति का मार्ग बताने वाले तथा अभय-स्वरूप के बोधक पंच गीतों—वेणु-गीत, गोपी-गीत, युगल गीत, भ्रमर-गीत और उद्धव-गीत का सविस्तर प्रतिपादन है। "विद्या-निधानों के लिए भागवत एक कसौटी है, अर्थात् दुर्ज्ञेय है"—इस सूक्ति के कारण इन पंच-गीतों का सर्वजन-सुलभ भावानुवाद हिन्दी में प्रकाशित करके भावानु-वादक महोदय ने हिन्दी-भाषी समाज पर महान् उपकार किया है।

मैं श्री भानुप्रतापचार्यजी को इसके लिए धन्यवाद देते हुए पाठकों से आशा करता हूं कि वे इसकी कवियों पर दृष्टि न डालते हुए तथा इसके गुणों से पूरा लाभ उठाते हुए लेखक के श्रम को सफल करेंगे।

(पं०) सदाशिव शास्त्री

प्राक्कथन

समस्त विश्व में, विशेषकर भारतवर्ष में, कौन ऐसा लेखक या मनीषी होगा, जो श्रीकृष्ण के पावन नाम और उनकी लीला-कथाओं से गुम्फित श्रीमद्भागवत को न जानता हो !

कलकत्ता-निवासी श्री भगवतीप्रसादजी खेतान के निवास-स्थान पर विक्रम-संवत् २०३७, पुरुषोत्तम मास प्र० ज्येष्ठ शुक्ल १ से एक मास तक मुझे श्रीमद्भागवत पर प्रवचन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय श्री खेतानजी की प्रेरणा हुई कि श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अंतर्गत वर्णित पंचगीतों—१. वेणुगीत २. गोपीगीत ३. युगलगीत ४. भ्रमरगीत और ५. उद्धवगीत के—श्लोकों पर मैं अपने भाव और भावानुवाद लिख दूं, जिससे उनका सटीक प्रकाशन किया जा सके। उनकी उसी प्रेरणा के फलस्वरूप प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के हाथों में है।

पंचगीत अत्यन्त सरस, भावपूर्ण तथा भगवद्-भक्ति से ओतप्रोत हैं। उन्हीं के भावों को मैंने लेखनीबद्ध करने का यत्किंचित् प्रयास किया है। इसमें श्रीधरी संस्कृत-टीका, अन्वितार्थ-प्रकाशिका और वृन्दावनस्थ पूज्य-पाद श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानन्द जी सरस्वती की सटीक श्रीमद्भागवत से शब्दार्थ समझने तथा यत्र-तत्र लिखने में सहायता ली गयी है, जिसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापन करता हूं।

दीक्षा और शिक्षा-गुरु श्रद्धास्पद स्वामी श्री माधवाचार्यजी और श्रीरंगलक्ष्मी आदर्श संस्कृत महाविद्यालय के निवर्तमान व्याकरण-विभागा-ध्यक्ष, व्याकरण-वेदान्ताचार्य पूज्य पं० सदाशिवजी शास्त्री महाराज के शुभाशीर्वाद से, विशेषकर स्वामी श्री कृष्णानन्दजी महाराज के परमा-नुग्रह-फलस्वरूप, प्रस्तुत पुस्तक अधिकमास के अधिष्ठाता श्री पुरुषोत्तम भगवान् के चरण-कमलों में सादर समर्पित करते हुए सभी विज्ञ पाठकों

सें निवेदन है कि इसमें जो सत्य तथा यथार्थ गुण है, वह उक्त महापुरुषों की कृपा का ही फल है तथा इसमें जो दोष और त्रुटियां हैं, उनके लिए दोषी मैं हूं। आशा है, इस पुस्तक से सभी पाठक लाभ उठावेंगे।

पुस्तक के प्रकाशन में योगदान के लिए मैं श्री भगवतीप्रसादजी खेतान तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवीजी खेतान का हार्दिक साधुवाद करता हूं।

भानुप्रतापाचार्य

वहरांवडा कलाँ (सवाई माधोपुर),
राजस्थान

अनुक्रम

□□

□□

श्रीमद्भागवत
के
पंचगीत

•

श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः

आदौ गणपतिं ध्यात्वा भक्तानुग्रहकातरम् ।
स्वामिनं त्यागमूर्तिं श्रीकृष्णानन्दं नतोऽस्म्यहम् ।।

वन्दे सरस्वतीं देवीं श्रीपतिं पवनात्मजम् ।
गुरुं श्रीमाधवाचार्यं ज्ञानदं श्रीसदाशिवम् ।।

प्रणम्य पितरौ सम्यग् वैष्णवाञ्च द्विजान् मया ।
'पंचगीता'भिधा चेयं पुस्तिका हि विरच्यते ।।

१ / वेणु-गीत

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के २१वें अध्याय के अंत-र्गत सुन्दर शरत्कालीन प्रसंग में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी वेणु द्वारा जो गान किया था अथवा वंशी के उद्देश्य से आकर्षित गोपियों ने—'हमारे हृदयेश वंशी के बजाने वाले श्रीकृष्ण ही हैं', प्रेम में वास्तविक रहस्य न बताकर 'व्रजेशसुतयो...' आदि वाक्यों द्वारा बलरामजी सहित जिन भावों का वर्णन किया है, उनका नाम वेणु-गीत है।

दूसरे शब्दों में, वेणु आचार्य(गुरु)रूप है, जिसके द्वारा गुरु-शिष्य-परम्परा के अनुसार वेणु-नाद से दीक्षित गोपियाँ अपने को भागवत धर्म या शरणागति-मार्ग में श्रीकृष्ण के लिए समर्पित करती हैं, क्योंकि जीव जबतक गुरु के द्वारा पुरस्कृत या समाश्रित नहीं होता, तबतक वह स्वयं अपने साधन के बल पर भगवद्-अनुग्रह का पात्र पूर्णतया नहीं बन सकता। राम-चरितमानस में भी भरतजी चित्रकूटस्थ अपने आराध्य श्री-राघवेन्द्र के पर्णकुटीर-द्वार पर "हे नाथ, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!"

पाहि पाहि रघुनाथ गोसाईं।
भूतल परेउ लकुटि की नाईं॥

कहते हुए साष्टांग प्रणाम की स्थिति में भूमि पर पड़े थे, तब आचार्यरूप श्री लक्ष्मण के 'भरत प्रनाम करत रघुनाथा' कहने

पर तुरन्त ही श्रीराम ने उठाकर उनका आलिंगन किया था।

अतः वेणुनाद-परम्परा से समस्त गोपियों को परब्रह्म श्रीकृष्ण की उपलब्धि और शरणागति दिलानेवाला १३ श्लोकों में प्रसिद्ध यह वेणु-गीत अत्यन्त सरस है। यह वंशी-रव गोपियों के लिए वर है।

गोप्य ऊचुः

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु-जुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥१॥

पारस्परिक वार्त्तालाप करते हुए गोपियाँ एक-दूसरे से बोलीं—"हे सखि! गोप सखाओं के साथ गौओं को चराने के लिए वन में जाते हुए या आते समय, गौर-वदन श्री बलराम तथा श्यामवर्ण श्रीकृष्ण के वंशी बजाते समय तथा हमारी ओर अपनी प्रेमभरी चितवन से देखते हुए मुख-कमल की माधुरी का जिन नेत्ररूपी भँवरों ने अनुभव किया है, उन्हीं आँखों तथा आँखवालों का सबसे प्रियदर्शन, एक यही परम फल है। इससे बढ़कर हम विशेष कुछ नहीं जानती हैं।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-
मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण आम्र की नयी कोंपलों, मोर-पंख और विविध प्रकार के पुष्पों के गुच्छों, रंग-बिरंगे कमलों और कुमुदों की मालाओं को धारण किये हुए हैं। नीलाम्बर और पीताम्बर ओढ़े विचित्र वेष वाले बलराम और घनश्याम गौ चराने वाले गोप-बालकों की सभा के बीच गाते हुए बहुत सुन्दर लगते हैं, मानो किसी नटसभा में अभिनय या गायन करने वाले दो श्रेष्ठ नट शोभित हों। देखिये, यह व्रजगोपों का महान् पुण्यफल है।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥३॥

अरी सखियो ! इस वंशी ने न जाने कौन-सा पुण्य किया है कि हम गोपियों को भी दुर्लभ दामोदर की अधर-सुधा का किस स्वतन्त्रता से उपभोग कर रही है! ऐसा जान पड़ता है

कि हमारे लिए थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं छोड़ेगी। जिस जल से इस वंशी का सिंचन हुआ है, माता के समान वे तलैयाँ, अपने जल में खिले हुए कमलों के बहाने जैसे रोमांचित हो रही हैं। साथ ही समान जाति वाले होने के कारण अन्य वृक्षगण भी वेणु से अपना संबंध मानकर मधु-धारा के रूप में आनन्दाश्रुओं को प्रवाहित करते दिखायी देते हैं, जैसे कुलवृद्ध व्यक्ति अपने वंश में किसी भगवद्-भक्त को देखकर शरीर से पुलकित होकर बार-बार अश्रुपात करने लग जाता है।

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद् देवकीसुत-पदाम्बुजलब्धलक्ष्मि।
गोविन्दवेणुमनु - मत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ ४ ॥

हे सखि! यशोदाजी के बेटे श्रीश्यामसुन्दर के चरण-कमलों से अंकित तथा प्राप्त ऐश्वर्य से युक्त यह वृन्दावन तो इस पृथ्वी के सुयश को स्वर्ग से भी कहीं अधिक दूर तक फैला रहा है। गोविन्द के वंशी-वादन को सुनकर तथा श्रीकृष्ण को नीलमेघ जानकर मयूर नृत्य करने लगते हैं। यहाँ पर्वत के शिखरों पर रहने वाले अन्य सभी जीव अपने-अपने क्रिया-कलाप छोड़कर

शान्त हो जाते हैं। ऐसा और कहीं भी देखने को नहीं मिलता। अतः भूमि के यश-विस्तार में यही हेतु है।

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥ ५॥

अरी सखि! जब विचित्र वेष धारण करके श्रीकृष्ण वंशी वजाते हैं तो पशु-जाति की होने के कारण विवेकहीन ये हरिणियाँ अपने पति कृष्णसार मृगों के साथ नन्द-नन्दन के पास आ जाती हैं और कमल के समान अपने बड़े-बड़े नेत्रों से उन्हें प्रेमपूर्वक निहारती हैं। वास्तव में इनका जीवन धन्य है! ये कृतार्थ हैं जो श्रीकृष्ण की प्रेमभरी चितवन के द्वारा किया हुआ सत्कार स्वीकार करती हैं। हमारे पति गोप तो क्षुद्र हैं, जो पूजा-व्यवहार को अपने सामने सहन नहीं कर सकते!

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥ ६॥

हे सखियो ! मोर और हरिणी तो इसी पृथ्वी पर रहने वाले हैं, पर स्वर्ग में रहने वाली देवियों की भी हमारे श्याम के वेणु-गीतों को सुनकर विचित्र दशा हो जाती है। हर समय उत्सव के समान रूप और स्वभाववाले श्रीकृष्ण को देखकर तथा इनकी वंशी के विचित्र गीतों को सुनकर विशेष विमुग्ध, विमान द्वारा अपने पतियों के साथ आकाश में विचरण करने वाली देवियाँ भी अचेतन हो जाती हैं। उनकी चोटियों में लगे हुए पुष्प कब और कहाँ गिर गए, वे यह भी नहीं जान पाती हैं। यही नहीं, उन्हें यह भी पता नहीं चलता कि उनके वस्त्रों का क्या हुआ ! इतनी मोहित वे हो जाती हैं !

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥७॥

हे सखि ! श्रीकृष्ण के रूप-सौंदर्य को अपने नेत्रों के द्वारा मन-पटल पर देख और आलिंगन कर आनन्दातिरेक से गौएँ भी अपनी आँखों से आसुओं की धारा बहाती हैं। श्रीकृष्ण के मुख से निकला हुआ वेणु-गीतामृत नीचे न गिर जाये, ऐसी आशंका के कारण खड़े किये हुए अपने कान-रूपी पान-पात्रों के

द्वारा उसे पीती हुई खड़ी रहती हैं। वंशी की आवाज़ सुनकर छोटे-छोटे बछड़े भी अपनी माताओं के स्नेह से स्रवित दूध को पीना भूल जाते हैं।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥८॥

हे सखि ! इस बृन्दावन में जितने भी पक्षी हैं, प्रायः वे सब मुनि कहलाने के योग्य हैं, क्योंकि वे सुन्दर पत्तोंवाली, वृक्षों की घनी शाखाओं का आश्रय लेकर, अपने खाने-योग्य फलों का मोह छोड़कर, चुपचाप बैठ जाते हैं और श्रीकृष्ण को छोड़ और किसी के दर्शन करने या होने में अपनी अरुचि प्रकट करने की इच्छा मात्र से अपनी संकुचित आँखों से श्रीकृष्ण का ध्यान करने लग जाते हैं और निर्निमेष नेत्रों से श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी तथा प्यार-भरी चितवन देख-देखकर निहाल होते रहते हैं। वे कानों से अन्य किसीकी वाणी भी सुनना पसन्द नहीं करते, केवल श्रीकृष्ण के सुमधुर संगीतमय वेणु-गीतों को ही सुनते हैं। महात्मा भी वेदरूपी वृक्ष की कर्म-शाखा का ही सहारा लेकर, कर्म-मूल का परित्याग कर, निष्काम कर्म को अपनाते हैं और श्रीकृष्ण

के दर्शन के लिए अपनी आँखें मूँदकर ध्यानस्थ हो उनके चरित्र-गीत सुनते रहते हैं। इनका जीवन कितना सराहनीय है !

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥९॥

अरी सहचरी ! यह तो हुई अबतक चेतनों की दशा-कथा ! अब थोड़ी जड़ नदियों की स्थिति भी तो सुनो ! नदियाँ भी वेणु-नाद को सुनकर, भँवरों की मंदगति हो जाने की सूचना से अपने हृदय में स्थित श्रीकृष्ण के मिलने की तीव्र आकांक्षा और प्रेम-संस्पर्श को प्रदर्शित करती हैं। वे श्रीकृष्ण के आलिंगन से युक्त तरंगरूपी अपनी भुजाओं से पास में ही खिले हुए कमल-पुष्पों की भेंट चढ़ाती हुईं श्री मुरारि के पाद-युग्म को मन में धारण करती हैं, मानो लज्जा और धैर्य का त्याग कर वे नदियाँ अपने पति समुद्र के पास भी न जा पाती हों !

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः
संचारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥१०॥

सखि! श्रीकृष्ण लोक-ताप का हरण करने वाले हैं और आकाश के मेघ सूर्य का ताप हरण करने वाले हैं। ताप-नाशक होने से दोनों ही मित्र हैं। हे आली, मेघ जब विजली-रूपी अपने नेत्रों से देखते हैं कि व्रजराज श्रीकृष्ण और वलराम ग्वालों के साथ धूप में गौएँ चरा रहे हैं तथा बाँसुरी वजा रहे हैं, तव उनके हृदय में प्रेम उमड़ आता है और वे उन पर छाता वना देते हैं, फिर जलकण-रूपी पुष्प-वर्षा करने लगते हैं। उस समय ऐसा लगता है, मानो श्वेत पुष्पों को उनपर चढ़ा रहे हों।

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग-
श्रीकुंकुमेन दयितास्तनमण्डितेन।
तद्दर्शनस्मर - रुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥११॥

अरी सखि! वन में रहनेवाली इन भीलिनियों का जीवन भी कृतार्थ है, धन्य है! पहले तो गोपियों के वक्षःस्थल पर लगा पीत पुलिन श्याम के चरणों में लग जाता है। जब हमारे प्यारे श्रीकृष्ण गौएँ चराने वन में जाते हैं, तो उनके चरणों का कुंकुम घास तथा तृणादि पर लग जाता है। उस कुंकुम के दर्शन-मात्र से पुनः श्रीकृष्ण के मिलन की उत्कंठा से कामातुर हो उठती हैं और कुश-तृण-संलग्न कुंकुम को अपने मुख और हृदय पर लगा-

कर अपनी काम-जनित व्यथा को सदा के लिए त्याग देती हैं। प्यारी सखि, हमारी यह दशा तो इन भीलिनियों से भी अधिक शोचनीय है।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्श-प्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूपवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१२॥

प्रिय गोपी! यह पर्वतराज गोवर्द्धन तो हरि-दासों में अत्यन्त श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य! जब श्रीकृष्ण तथा वलराम के गौएँ चराते समय उनके दिव्य अरुण चरण का स्पर्श होता है तो कुशादि के उद्गम-स्वरूप इसके भी रोमांच हो आता है और यह गिरिराज प्रतिदिन गौओं के लिए घास देता है। और गोप-सखाओं सहित बलदाऊ और कन्हैयालाल का अपने झरनों के सुपेय, स्वच्छ और मधुर जल से, हरे-भरे तृण-समूह से और कन्दरा तथा कन्द-मूलादि से भरपूर आदर-सत्कार करता है।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार-
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ।।१३।।

अरी सखि ! जादू-भरी वंशी का और भी विचित्र चमत्कार सुन ! गोपों के साथ जब वनान्तर में गौओं को चराने के लिए जाते समय श्री बलराम-कृष्ण का महा वेणु-नाद होता है, तब जड़ लता-वृक्षादि में रोमोद्गम-रूप जंगम धर्म और शरीरधारी मनुष्यों, पशु-पक्षियों और सतत प्रवाहित नदियों में निश्चेष्ट रूप स्थावर धर्म का तत्काल उदय हो जाता है; अर्थात् वेणु-रव चर को अचर और अचर को सचर करने वाला है। फिर बल-राम और श्याम के अंग-राग-युक्त शरीर तथा शिर का हाल तो अद्भुत है। अरी सहेली ! वे दुग्ध-दोहन के समय गायों के पैरों को बाँधने वाली रस्सी को सिर पर पगड़ी की भाँति लपेटे हुए और उद्धत स्वभाव वाली गायों को भागने से रोकने के लिए फंदे वाली रस्सी को कंधे पर डाले हुए सुनने वालों को परमा-नंद-प्रद वेणु-गीत सुनाया करते हैं।

२ / गोपी-गीत

श्री राधा तथा उनकी काव्यव्यूह-रूप व्रजाङ्गनाओं के साथ होने वाली श्रीकृष्ण की दिव्यातिदिव्य चिन्मयी रासलीला से अखिल रसामृत-सिन्धु रसराज श्री रासबिहारी के अन्तर्हित हो जाने पर गोपियों की कृष्णागमन-प्रार्थना ही 'गोपी-गीत' के नाम से वर्णित है, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का ३१वां अध्याय है।

इस गीत की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

१. इसके १९ श्लोकों में प्रत्येक श्लोक द्वितीय या चतुर्थ पाद में द्वितीयाक्षर-समान ही होगा।

२. यह ललित राजहंसी छंद है।

३. 'जयति तेऽधिकं' से बोलना प्रारम्भ करें या श्लोक के अन्तिम पद 'त्वां विचिन्वते' से बोलें, अथवा मध्य 'दयित दृश्यतां शश्वदत्र हि' आदि से तोड़-फोड़कर भी श्लोक बोले जायँ, तब भी इसके राग की संगति प्रायः सभी दशाओं में समान बैठ जाती है, क्योंकि यह गोपांगनाओं का क्षण-क्षण बढ़ने वाला प्रेमगीत है। रुदन में भी बुद्धिगत भाव की आवश्यकता रहती है। प्रेम की प्रथमावस्था का नाम 'भाव' है। फिर भाव की सघन या सान्द्रावस्था ही प्रेम नाम से व्यंवहृत हो जाती है।

'भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमानिगद्यते।'

(भक्ति-रसामृत-सिन्धु)

अकृत्रिम, स्वाभाविक, अद्वितीय, भावमय यह भक्ति-रस से ओत-प्रोत श्लोक 'गोपी-गीत' हैं ।

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

हे दयित ! आपके अवतार लेने से वैकुण्ठादि लोकों से भी अधिक इस व्रज का उत्कर्ष हो रहा है। आपकी अनुयायिनी लक्ष्मीजी भी श्री नाम की सफलता के लिए नित्य ही इस व्रज में रहने लगी हैं और इसकी सेवा करती हैं। परन्तु आपकी प्राप्ति की आशा से किसी प्रकार प्राण-धारण करने वाली आपकी ही हम गोपिकाएँ इस वन की दिशाओं में आपको ढूंढ़ रही हैं। कृपा करके हमें शीघ्र ही प्रत्यक्ष दर्शन दीजिये !

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥

समस्त भोगों में प्रयुक्त होने वाले पदार्थों के एकमात्र अधि-पति, हे श्रीकृष्ण !, सांसारिक भोगों की प्राप्ति तो पूर्व जन्मों के फलस्वरूप दास-दासियों को स्वतः प्राप्त होती है, परन्तु अलौकिक प्रेम की प्राप्ति के लिए हम तो तुम्हारी बिना मोल की दासी हैं। हे अभीष्ट के दायक ! तुम शरत्काल में जलाशय में पूर्ण विकसित कमल की शोभा वाले हृदय-हारी नेत्रों से हमारे प्राणों का अपहरण कर चुके हो। क्या शस्त्र-वध ही वध है ? नहीं, दृष्टि से वध करना भी वध ही होगा। चाहे चोर के द्वारा विहित गुप्त वध को लोग न जान पावें, पर हत्या का दोष तो उसे लगेगा ही। इसलिए हमारे जीवन के लिए प्रत्यक्ष दर्शन शीघ्र दीजिये !

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ।।३।।

हे पुरुष-श्रेष्ठ ! यमुना में स्थित कालियनाग के विषमय जल से होने वाली मृत्यु से, अघासुर अजगर सर्प से, क्रोधित इन्द्र के निरंतर आँधी, बिजली, वायु, जल-वर्षण से, वृष अरिष्टासुर के पुत्र व्योमासुर से (यद्यपि अभी तक श्रीकृष्ण-लीला में उक्त दोनों असुर नहीं आये हैं, न अभी ये मारे ही गए हैं, परन्तु श्रुति-अवतार होने से, उनके बारे में गोपियों को यह भावी ज्ञान है

और उसी सम्बन्ध में उनका यह सत्य कथन है।) तथा कालिय-सर्प-दमनादि सभी भयों से आपने कई वार हमारी रक्षा की। फिर, इस समय हमारी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? विश्व-परि-पालन के लिए अवतीर्ण हे प्रभो! तुम्हारे द्वारा भक्तों की उपेक्षा ठीक नहीं है। अतः कृपा करके हमें जल्दी ही दर्शन दीजिये !

नखलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥४॥

हे सखे ! यह निश्चित है कि आप केवल यशोदा के पुत्र ही नहीं हैं, बल्कि सभी प्राणियों की बुद्धि के साक्षी अन्तर्यामी भी हैं। विश्वपरिपालन के लिए ब्रह्मादिकों द्वारा प्रार्थना करने पर इस सात्वत कुल में आपने अवतार लिया है।

[अग्रिम ४ श्लोकों में प्रार्थना-चतुष्टय सम्पादन करने के लिए गोपी-कंठाभरण श्रीकृष्ण से गोपियों की अभिलाषा व्यक्त की गई है।]

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

हे वृष्णिधुर्य ! हे कान्त ! संसार के जन्म-मृत्यु-रूप भय से व्याकुल होकर जो आपके चरण-कमल की शरण लेते हैं, उन्हें सर्वदा अभय प्रदान करने वाले तथा श्री लक्ष्मीजी के करकमलों को पकड़नेवाले इस वरद हस्त को हमारे मस्तक पर रखिये !

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ।।६।।

हे व्रजजनों की पीड़ा का हरण करने वाले ! तुम्हारा मंद हास ही अपने भक्त जनों के गर्व का ध्वंस कर देता है। इसलिए हे वीर ! हमारा गर्व नाश हो ही गया, अब अंतर्धान होने से क्या लाभ है ? हम सब तुम्हारी दासियाँ हैं। तुम ही हमारे आश्रय हो। अपना मधुर मुख-कमल हम गोपियों को दिखाइये !

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ।।७।।

शरणागत जीवों के निखिल पाप-पुंज को आपके पादपद्म शीघ्र ही हनन करनेवाले पापहन्ता हैं। यह आपका स्वाभाविक

गुण है। कृपालु प्रभो! कृपामय स्वभाव से इन्हीं सुकोमल चरणों से आप तृण चरने वाले गाय-बछड़ों के पीछे भी चलते हैं। सौभाग्य से लक्ष्मीजी भी इन चरणों का नित्य आश्रय प्राप्त करती हैं। वीर्यातिरेक से वे ही पद-कमल कालिय के फणों पर भी आपने रख दिए। तब हे नाथ! अपने इन मृदुतर चरणों को हम गोपियों के शरीर में अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक सुकोमल वक्षःस्थल पर रख दीजिये, जिससे हमारे हृदय की तीव्र ज्वाला शान्त हो।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण !
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतोरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥

हे कमलनयन! कोयल की भाँति मधुर तथा मनोहर बड़े-बड़े विद्वानों को भी मोहित करने वाली, आपकी सुमधुर गंभीर वाणी से हम भोली-भाली गोपियाँ विमुग्ध हैं। इसलिए हम दासियों को अपने अधरामृत से, जो पृथ्वी में उपलब्ध नहीं हो, ऐसे दिव्य प्रेमामृत से, आप्यायित करें।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥९॥

हे प्रभो ! तुम्हारे गुण-कर्म-नाम रूप लीला-कथाओं का कथन भी अमृत ही है, जो कि त्रिविध (दैहिक-दैविक-भौतिक) तापों से संतप्त जीवों को बचाता है। सुविज्ञ तत्त्वज्ञ, ब्रह्मविद् ज्ञानी और उपासकों ने भी आपकी स्तुति की है। आपका गुण-गान या सुयश श्रवण करने मात्र से जन-मन-कल्मष को दूर करने वाला तथा मंगलकर है। देवभोग्य अमृत भी इसके सामने अत्यल्प तथा तुच्छ है, क्योंकि वह तो मादक है जबकि यह कथा-मृत शीतल तथा शान्त है और समस्त पृथ्वी में फैला है। इसका जो सतत गान करते हैं, वे पूर्वजन्म में भी वहुत पुण्यदान करने वाले हैं तथा इस जन्म में भी सबसे बड़े दानी तथा धन्य हैं। फिर जो तुम्हें देखते हैं, उनके लिए तो कहना ही क्या ! अतः आपकी कथा-मात्र से हमें शान्ति नहीं मिलेगी, कृपया अविलम्ब हमारे सामने आ जाइये !

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमंगलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ।।१०।।

हे प्रियतम कपटी मित्र ! ध्यान-मात्र से मंगलप्रद तुम्हारी मंद मुस्कान और तुम्हारा प्रेम-पूर्वक देखना, हमारे हृदय को उद्वेलित करने वाला तुम्हारा एकान्तिक उपहास हम सबके मन को व्याकुल किये देता है। अतः तुम्हारे पारम्परिक गुण-गान से

हमें पूर्णशान्ति नहीं मिलेगी। हमारी प्रार्थना है कि हमें आप तरसाओ मत, जल्दी ही दर्शन दो !

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ।।११।।

हे नाथ ! हमारा चित्त तुम्हारे प्रेम में डूबा है। तुम्हारे दु:ख से शंकित-चित्त अवला व्रजबालाओं का हमारा मन यह सोचकर बेचैन हो उठता है कि तुम व्रज से गौ चराने के लिए चलते हो तो कमल से भी कोमल तुम्हारे चरण शिला-कणों और तृणांकुरों से भी कष्ट पाते होंगे।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं. बिभ्रदावृतम् ।
धनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ।।१२।।

हे वीर ! सायंकाल जब गौ चराकर आप व्रज में लौट आते हैं तब नील कुंचित केशों से ढका हुआ और गौ-रज से मण्डित सौन्दर्यमय मुखकमल दिखाकर हमारे मन में केवल काम उत्पन्न

करते हैं। अपना संसर्ग हमें नहीं देते हैं। यही आपकी कामपटुता है। अतः कपट का परित्याग कर ऐसा ही करें।

[इसके लिए पुनः आगे के दो श्लोकों में प्रार्थना है।]

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपंकजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

हे रमण! हे आधिहरण! मन के समस्त दुःखों को दूर करने वाले! प्रणाम करने वालों के सभी अभीष्टों को प्रदान करने वाले आपके पाद-कमल हैं, जो ब्रह्मा के द्वारा पूजित हैं, भू-देवी के तो वे अलंकार-रूप ही हैं। विपद्-काल में तो एकमात्र वे ही ध्यान करने योग्य हैं। सगे-सम्बन्धी और पुत्र-गृह-धनादि तो रक्षा करने में सदा असमर्थ हैं। अतः सेवन करने में आनन्द देने वाले वे अपने पाद-पद्म हमारी ज्वाला की शान्ति के लिए हमारे हृदय पर रख दीजिये!

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

हे प्रियतम! आपका अधरामृत मिलन-सुख की वृद्धि करने वाला है। वह परम दुःखनाशक है एनं वंशीनादामृत-वासित, सार्वभौमादिसुखेच्छा की विस्मृति करनेवाला है। वही अपना अधरामृत-रूप प्रेमप्रसाद हमें भी वितरण कीजिये!

[अर्थात् विपत्ति में त्राण पाने के लिए भजनीय आपके चरण-कमल और आपके दिव्य प्रेमामृत की प्राप्ति की ही हमें पूर्ण अभिलाषा है। केवल इसीमें मानव-जीवन की सफलता और सार्थकता है।]

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥१५॥

हे स्वामिन्! आपके दर्शन न होने से हमें दुःख होता है और आपके दर्शन हो जाने से बार-बार सुख का अनुभव होता है। जब दिन में आप वृन्दावन में विहार के लिए चले जाते हैं, तब आपको बिना देखे, एक पल भी हमें युग के समान प्रतीत होता है। फिर दिनान्त के समय घुंघराले एवं काकपक्ष-तुल्य केशवाले तुम्हारे मुख को जब हम देखती हैं तो नेत्रों की पलकों को बनाने वाला ब्रह्मा भी हमें जड़ ही मालूम पड़ता है, जिससे निमिष-मात्र का अन्तर भी असह्य लगता है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि
॥१६॥

[इस श्लोक में गोपियों का संन्यास-वर्णन है। वे गृहस्थ में पति-पुत्र वाली भी अनासक्त-भाव से रहती हैं। उनके आराध्य एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं। वे कहती हैं :

[हे अच्युत ! तुम हमारे आने का कारण जानते हो या हम तुम्हारी एक-एक चाल को समझती हैं। तुम्हारे उच्च स्वर से गाये गए गीत को सुनकर मोहित हो हम तुम्हारे पास अपने पति, पुत्र, भाई आदि सभी की आज्ञाओं का उल्लंघन करके आयी हैं। जिसने संसार की आसक्ति छोड़ दी, उस जीव को तो आप सदा से ग्रहण करते आये हैं, इसलिए हमें भी ग्रहण कीजिये। हे प्रभो ! तुम्हारे अलावा रात्रि में स्वयंप्राप्त नारियों का और कौन परित्याग कर सकेगा ? [अर्थात् आत्माराम श्रीकृष्ण, केवल आपमें ही ऐसी सामर्थ्य है।]

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥

पहले तुम्हारे दर्शन कर लेने से हमें जो तुम्हारे संग से हृदय-रोग उत्पन्न हुआ है, उसकी चिकित्सा भी तुम्हारा संग

ही है, क्योंकि विष की दवा विष ही है (विषस्य विषमौषधम्)। अत: एकान्त में तुम्हारे द्वारा हमारे प्रेम-भाव को जाग्रत करने के लिए जो संकेत होते थे, तुम्हारा प्रसन्न मुख, प्रेम-भरी चितवन से तुम्हारा हमें देखना और लक्ष्मीजी का निवास-स्थान तुम्हारा विशाल वक्ष देखकर तुम्हारे सम्बन्ध में हमें अति स्पृहा होती है और बार-बार हमारा मन मोह-ग्रस्त होता है।

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ।।१८।।

हे प्रियतम ! तुम्हारा अवतार व्रजवासियों और मुनियों के पाप तथा दुःख-नाश के लिए और विश्व का मंगल करने के लिए है। अतः तुम्हारे प्रति मोह में आसक्त मन वाली तुम्हारी गोपियों के हृदय-रोग की औषधि निस्संदेह तुम्हीं हो। इसलिए हमें अपने संमिलन-रूपी औषधि प्रदान करो, जिससे सदा-सर्वदा के लिए सभी सांसारिक रोगों से शान्ति मिल जाय।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

रोदन करती हुई व्रजबालाएँ कहती हैं—हे प्रिय ! तुम्हारे सुकोमल चरण-कमलों को अपने कठोर स्तनों पर धारण करने में भी हमें डर लगता है। फिर इन्हीं किसलय के समान मृदुल चरणों से आप रात्रि के समय गहन जंगल में घूमते हैं। वहां क्या कठोर छोटे-छोटे कंकड़-पत्थरों के लगने से पीड़ा नहीं होती होगी ? अवश्य ही होती होगी। हमारी बुद्धि यह सोचकर ही चंचल है। हे गोपीजनवल्लभ ! हमारे एकमात्र जीवन-धन तो आप ही हैं।

[हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके शीघ्र ही अपने दर्शन द्वारा हमें कृतकृत्य कीजिये !]

३ / युगल-गीत

श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध के अंतर्गत ३५ वें अध्याय में श्रीकृष्ण के गौ चराने के लिए वन में चले जाने पर प्रेयसी व्रजांगनाएँ श्याम के विरह में दिन व्यतीत करने के लिए श्रीकृष्णलीला-कथाओं का स्मरण या गायन करती हैं। इस अध्याय में २-२ श्लोकों का एक वाक्य माना गया है। ऐसे बारह युग्म इसमें हैं, इसलिए इसे 'युगलगीत' कहते हैं।

पूर्व पद्य में लीला का वर्णन है तथा उत्तर पद्य में उनके पोष्य वर्ग का वर्णन है, क्योंकि पोष्य वर्ग के बिना लीला का उल्लास ठीक नहीं होता और लीला के बिना पोष्य वर्ग भी उल्लसित नहीं होता। यह युग्म प्रयोजन होने से भी इसका 'युगल-गीत' नाम सार्थक है।

प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक गौ को चराने की लीला का इसमें गान है। इस अध्याय के द्वितीय श्लोक से प्रारम्भ कर ११वें श्लोक तक श्रीकृष्ण के मध्याह्न-पूर्व बृत्त का इसमें वर्णन है। १२ वें श्लोक में मध्याह्न-बृत्त का तथा १४ वें श्लोक से मध्याह्न-वाद के बृत्त का, १६वें में तृतीयकाल वृत्त का, १८ वें में चतुर्थ प्रहर के प्रारम्भ काल में व्रज लौटते समय गौ गणना-क्रम का गोपियों द्वारा वर्णन होते हुए २२ वें श्लोक में सायं-काल में श्रीकृष्ण के व्रज में पुनरागन पर व्रजांगनाओं का विरह-ताप मिट जाता है। इस प्रकार २५ श्लोकों में इस गीत की समाप्ति हो जाती है।

श्री शुक उवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ।
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥

प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण के गौ चराने के लिए वन में चले जाने पर उनमें आसक्त गोपियाँ श्रीकृष्ण-लीला का गान करती हुईं वे बहुत दुःखी होकर अपने दिन काटती हैं ।

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥२॥

गोपियां बोलीं, अरी गोपियो! जिनका वायां गाल बाईं भुजा की ओर झुका है, जिनकी भौंहें टेढ़ी हैं, जो भौंहों को नचाते हैं, जिनकी त्रिभंग-ललित, तिरछी ग्रीवा है, वह त्रैलोक्य-मोहन-मूर्ति श्रीमुकुन्द अपनी सुकोमल अंगुलियों से वंशी के छिद्रों को आश्रित किये हुए अरुण-तरुण बिम्ब-फल के समान अपने अधरों पर रखी हुई वेणु को बजा रहे हैं ।

व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥३॥

उस समय आकाश में अपने पतियों के साथ जाती हुई देवाङ्गनाएँ भी वेणु-गीत सुनकर पहले तो आश्चर्य-चकित हो जाती हैं, फिर काम-वाण से पीड़ित होकर उनके वस्त्रों की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। पतियों के साथ होने से लजाकर वे सब-की-सब मोह को प्राप्त हो जाती हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के विरह को हम कैसे सहन कर सकती हैं!

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत्।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो र्यहि कूजितवेणुः ॥४॥

प्यारी सखियो! श्रीकृष्ण वन के पास जाकर गौ-गोपों को मिलाने के लिए और गोपीजनों को लौटाने के लिए जब वंशी बजाते हैं तो पशु भी मोहित हो जाते हैं। हे आलि! इस विचित्र बात को सुनो। जब श्रीकृष्ण हँसते हैं, तो उनकी हास्य-रेखाएँ हार का रूप धारण कर लेती हैं या नीचे मुख करके हँसते समय वक्षःस्थल पर पहने हुए हारों में हास्य-रेखाएँ चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थल पर जो श्रीवत्स (लक्ष्मी) की सुनहरी रेखाएँ हैं,

वे ऐसी प्रतीत होती हैं, मानो काले बादलों पर बिजली ही स्थिर होकर बैठ गयी है। श्री नन्दकुमार हम-जैसे विरही जनों को सुख पहुँचाने के लिए ही वेणु बजाया करते हैं।

वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात्।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥५॥

व्रजगोष्ठ में जो गौएँ, बैल, बछड़े तथा हरिणादि हैं, वे सब दूर से ही वंशी की मधुर तान को सुनकर मोहित हो जाते हैं। बेचारे अपने मुख में रखे घास इत्यादि के ग्रास को भी नहीं चबा पाते। दोनों कानों को खड़ा करके, निद्रा-ग्रस्त की भाँति दीवार पर लिखे चित्रों की तरह, संज्ञा-शून्य, अर्थात् निर्जीव, हो जाते हैं। जब अज्ञानी पशुओं की ऐसी दशा हो जाती है, तब देवांगनाओं की तो बात ही क्या है!

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः।
कर्हिचित् सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥६॥

हे प्यारी सखी! श्रीबलराम और गोपों के सहित श्रीकृष्ण जब गौओं को जल-पान कराने हेतु वेणु में 'हे कालिन्दी! हे

गंगे !' आदि नामों से पुकारते हैं, उस समय सिर पर मोर-पंख का मुकुट, पुष्पों के गुच्छ और विशाल श्यामल भाल पर मनः-शिलादि रक्तधातु का तिलक-बिन्दु अपूर्व शोभा देते हैं। कभी-कभी सिर पर नवीन पल्लव बाँध लेते हैं। उस समय उनका स्वरूप-सौन्दर्य पहलवानों के समूह को भी तिरस्कृत करने वाला होता है।

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ।।७।।

उस समय यमुना-मानसगंगादि अचेतन नदियाँ भी वेणु-ध्वनि में अपना नाम-सा सुनकर स्तंभित तथा निश्चल हो जाती हैं, उनका प्रवाह रुक जाता है, मानो बेचारी श्रीकृष्ण के आलिंगन का लाभ लेने के लिए प्रेमोद्रेक के कारण कंपित भुज-तरंग वाली बन जाती हैं। जब उन्हें उनका आलिंगन भी प्राप्त नहीं होता, तो वे कामना करती हैं कि वायु के द्वारा उड़ायी गई श्रीकृष्ण की चरण-रज ही उन्हें मिल जाय, तो वे अपने को धन्य मानेंगी, क्योंकि हे सखी ! हमारी तरह वे भी इस लोक-परलोक की गति से विस्मृत हो निश्चेष्ट हो जाती हैं, मानो वे भी हम-जैसी भाग्यहीना ही हैं।

[उक्त श्लोक द्वारा ५ क्रम सिद्ध होते हैं; (१) वंशीनाद-श्रवण; (२) गति-भंग; (३) तदालिंगनेच्छा से भुज-कम्प होना; (४) श्रीकृष्ण की पद-रज की इच्छा; होना तथा (५) अप्राप्ति पर गोपियों का निश्चेष्ट हो जाना।]

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः।
वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽऽह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥

ओ सखी ! जैसे आदि-पुरुष भगवान् की स्तुति ब्रह्मादि देवता करते हैं, वैसे ही गोवर्धन पर्वत या यमुना के तट पर वन में गौ चराते हुए श्री श्यामसुंदर की गोपगण स्तुति करते रहते हैं। वे अचल लक्ष्मीपति देवाधिदेव श्रीकृष्ण जब गायों का नाम लेकर वंशी द्वारा पुकारते हैं, तब सब-की-सब गौएँ एकत्र हो जाती हैं।

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥९॥

उस समय पुष्प-फल-रूपी धन के भार से लदी हुई वनलताएँ पृथ्वी पर नीचे की ओर झुक जाती हैं, मानो वे प्रणाम कर रही हों। साथ ही उनके पति भी। जैसे कहीं स्त्रियों-सहित मुनि जन अपने हृदय में ध्यान से श्रीविष्णु को प्राप्त कर रोमांचित होते हों, वैसे ही मधुधारा का स्राव करती हुई वृक्षलताएँ अपने में श्रीहरि के आनन्द को व्यक्त करती हैं।

दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः।
अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि संधितवेणुः ॥१०॥

अरी प्यारी सखी ! देखने-योग्य जितनी भी वस्तुएँ हैं उनमें श्रीकृष्ण ही मुख्य हैं। उनकी पंच-वर्ग-पत्र-पुष्पमयी जो वन-माला है, उसमें लगी हुई दिव्यगन्धा तुलसी के मधु से मतवाले भ्रमर ऊँचे स्वर में बोल रहे हैं, मानो उन भ्रमरों के गीत का भी हमारे प्यारे श्रीकृष्ण समादर करते हुए, वेणु का अधरों पर संधान करके उनके साथ वंशी बजाते हैं।

सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य।
हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥११॥

उस समय जो सरोवरों में सारस, हंस आदि पक्षीगण श्रीकृष्ण के सुन्दर वंशी-गीत को सुनकर सांसारिक विषयों से अपने मन को हटाकर श्याम के सामने आ जाते हैं और मौन होकर, श्रवण-सुख से आँखें मूँदकर, सन्तों के समान बैठ जाते हैं, तो ऐसा लगता है, मानो उपासना कर रहे हों।

सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः।
हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

अरी प्यारी व्रजदेवियो! वलरामजी के सहित श्रीकृष्ण पुष्पों का कानों में कुंडलाकार शृंगार कर श्री गिरिराज पर्वत के समान भू-भागों में घूमते हुए स्वयं प्रसन्न होकर अखिल विश्व को हर्षित करते हुए वंशी वजाते हैं।

महदतिक्रमणशंकितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः।
सुहृदमभ्यवर्षत् सुमनोभिश्छायया च विदधत् प्रतपत्रम् ॥१३॥

ब्रह्मादि के भी पूज्य भगवान् श्रीकृष्ण के वंशी-रव से कहीं मेरी आवाज ऊँची या विघ्नकारक न हो जाय, इस आशंका से

आकाश के मेघ भी धीमे-धीमे गर्जन करते हैं। अरी प्यारी सहेली! विश्व के ताप को हरने वाले तथा श्याम वर्ण की समानता रखने वाले ये बादल श्रीकृष्ण को अपना सुहृद् समझकर, उन्हें सूर्य की गर्मी से बचाने के लिए अपनी छाया का छाता उन पर लगा देते हैं और विरल जलवृष्टिरूपी पुष्पों की वर्षा करते हैं। यह पुष्प-वृष्टि नभ के अदृश्य देव करते हैं अथवा मेघ-रूपी देव?

विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः।
तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥१४॥

मध्याह्नोत्तर वृत्त का बखान करती हुईं गोपियाँ श्रीयशोदा के समीप जाकर गौओं को चराकर लौटते श्रीकृष्ण के वर्णन से नन्दरानी को प्रसन्न करती हुई बोलीं, हे सती-शिरोमणि यशोदा-जी, अनेक गोप-क्रीड़ाओं में कुशल तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्ण बिम्ब-फल की तरह लाल-लाल अपने अधरों पर वंशी रख कर बजाते हैं। वंशी-नाद के विषय में बहुत प्रकार की शिक्षा उनको स्वयं प्राप्त है, अतः किसी और से सीखने की ,उन्हें आवश्यकता ही नहीं है। वह निषाद-ऋषभ स्वर-अलापादि १८ प्रकार के मुख्य

भेदों को तथा अन्य सैकड़ों प्रकार की स्वर-जातियों को अपनी वंशी द्वारा बजाते हैं।

सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः।
कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥१५॥

उस समय इन्द्र, शिव और ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता, राग-रागिनियों के आचार्य सर्वज्ञ विज्ञ कवि भी उन स्वर-जातियों को समय-समय पर गर्दन झुकाकर सुनते हैं और मोहित हो जाते हैं। वे भी उस तत्त्व-भेद का निश्चय नहीं कर पाते हैं।

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजाकुंशविचित्रललामैः।
व्रजभुवः शमयन् सुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीरितवेणुः ॥ १६ ॥

अरी नवेली प्यारी सहचरी ! गौओं के खुरों के आक्रमण की व्यथा से दुःखी इस भूमि को ध्वजा, वज्रकमल, अंकुशादि २४-२४ विचित्र चिह्नों और सुन्दर रेखाओं से चिह्नित, अपने

सुकुमार पद-कमलों द्वारा शान्ति पहुँचाते हुए, महागजराज के समान गति वाले श्री नंदकुमार वंशी-वादन करते हुए चलते हैं।

व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितनोभववेगाः।
कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

तब उनकी विलासयुक्त चितवन हमारे हृदय में मिलन की इच्छा की उत्कटता बढ़ाती है। हम विवश होकर वृक्ष की भाँति निश्चेष्ट दशा को प्राप्त हो जाती हैं। फिर अचेत-अवस्था में हमें अपने वस्त्र और केश-पाश के खुले या बँधे रहने का भी भान नहीं रहता है।

मणिधरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥१८॥

अरी सखी ! शुक्ल, रक्त, श्याम, पीत वर्ण के १०८ मणि-गोलकों से बनी माला हमारे प्यारे श्रीकृष्ण का जो कण्ठहार है,

वह गौओं की गणना के लिए ही धारण की गयी है। असंख्य गायों के पृथक्-पृथक् वर्ण वाले १०८ यूथों की हँसी, चंदनी, गंगे, अरुणी, कुंकुमी, सरस्वती, श्यामला, धूमला, यमुना, पीता, पिंगला, हरिगीतिका आदि संज्ञा वाले यूथों की गणना माला से ही करते हैं। तुलसी की गंध उन्हें बहुत प्रिय है, इसलिए तुलसी की माला को पहने ही रहते हैं। कभी-कभी श्यामसुन्दर अपने किसी प्रिय अनुचर के कन्धे पर अपनी भुजा रखकर भी वंशी बजाने लग जाते हैं।

क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
गुणगुणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥१९॥

जिस प्रकार अपने घर की आशा, अभिलाषा और भोग-विलास को छोड़कर हम गुणों के समुद्र श्रीकृष्ण के आस-पास रहती हैं, उसी प्रकार वंशी की मधुर तान को सुनकर दत्तचित्त कृष्ण हरिणों की गृहिणियाँ भी श्रीकृष्ण के पास आ जाती हैं।

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥

हे पाप-रहित यशोदा ! कुन्दपुष्पों से वनी माला को धारण किये, ग्वालों और गौओं से घिरे, अपने स्वजन प्रेमी गोपों को हर्ष प्रदान करने वाले तुम्हारे पुत्र श्रीकृष्ण यमुनाजी के किनारे खेलते होंगे। इसलिए आने में देरी हो रही है।

मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन ।
वन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥२१॥

चन्दन की तरह शीत स्पर्श वाला मंदवायु या दक्षिण वायु श्रीकृष्ण का स्वागत करने के लिए सदा उनके अनुकूल ही बहता है और वन्दी जनों की तरह उपदेव गन्धर्वादि वाद्य, गीत, पुष्प-वर्षादि के द्वारा श्याम की चारों ओर से सेवा करते हैं। अतः इन उपदेवों के सत्कार से ही उनके आने में विलम्ब हो रहा है।

वत्सलो व्रजगवा यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडिवकीर्तिः ॥२२॥

अरी प्यारी सखी ! व्रज की गौओं का हित करनेवाले श्रीकृष्ण हम सबका ध्यान रखने वाले हैं। वे उसी तरह हम सव

पर भी अनुकम्पा करते हैं। इसलिए गौ, गोप और गोपियों की रक्षा के लिए उन्होंने गोवर्धन को धारण किया था। मार्ग में वृद्ध ब्रह्मादि उनके चरणों की वन्दना करने लगते हैं। सायंकाल गौओं को एकत्र कर उनके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे अब शीघ्र ही आने वाले होंगे।

उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनामुन्नयन् सुररजश्छुरितस्त्रक्।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकी जठरभूरुडुराजः ॥२३॥

अरी भोली सखी! वे दिन-भर गौ चराने से यद्यपि थक गये होंगे, फिर भी गायों के खुरों से उठी धूल से धूसरित हो गयी हैं गले की मालाएँ जिनकी, वे श्रीकृष्ण अपनी कान्ति से हमारी आँखों को अपार हर्ष प्रदान करते हुए श्रीनन्दराय की पत्नी देवकी (यह श्रीयशोदाजी का भी नाम था) की कोख से उत्पन्न होनेवाले, चन्द्रमा के समान आह्लादकारी, श्रीश्याम हम सबके मनोरथ सिद्ध करने की इच्छा से आ ही रहे हैं। (यह अंगुलि-निर्देश वाक्य है।)

मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥२४॥

अरी सखी ! थोड़े से मद से जिनकी आँखें विह्वल हो रही हैं, और जिनके दोनों कपोलों पर सोने के कुण्डलों की कान्ति शोभायमान हो रही है तथा अधपके बेरों के समान जिनका पीला मुख है, वे वनमालाधारी, भक्तसम्मानकारी वनवारी मुरारी आ रहे हैं।

यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥

हे सखी ! दिन के सन्ताप का जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी रश्मियों से निवारण करता है, वैसे ही व्रज की गौओं की भाँति हमारे दिन-भर के दुर्निवार विरह-जन्य ताप को मिटाने के लिए श्रीकृष्ण समीप ही आ रहे हैं।

श्री शुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥

श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! गोपियों का मन तथा चित्त श्रीकृष्ण की लीला-कथा-गायन में ही रम जाता है। उनके दिन श्रीकृष्ण-लीला के कथोपकथन में ही व्यतीत होते हैं। वे महासौभाग्यवती हैं।

४ / भ्रमर-गीत

श्रीकृष्ण के संदेशवाहक, प्रिय दूत तथा भक्तों में अग्रणी उद्धवजी जब मथुरा से बृन्दावन में श्री राधाजी और गोपियों के समक्ष पधारे, तब वहाँ एक 'भ्रमर'—जोकि कुछ विद्वज्जनों की सम्मति में श्रीकृष्ण ही थे—राधाजी के चरण-कमलों पर मँडराता है। उस समय तीव्र रोष के कारण चित्र-जल्पादि जो दश वाक्य राधाजी ने प्रेमोपालम्भ में भ्रमर-व्याज से उद्धवजी को कहे थे, उन्हींका नाम 'भ्रमरगीत' है। यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के ४७ वें अध्याय के १२ वें श्लोक से २१ वें श्लोक तक क्रमशः प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उजल्प, संजल्प, अप-जल्प, अभिजल्प, अजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प नाम से माने जाते हैं।

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशांघ्रि सपत्न्याः
कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥१॥

ओ कपटी मित्र भ्रमर! हमारी सौत के कुच-वक्षःस्थल से आलिंगन-दशा में विमर्दित, श्रीकृष्ण की वनमाला तथा उसके स्पर्श से प्राप्त कुंकुम के कारण रक्त-पीत हुई मूँछों से हमारे पैर मत छू, अर्थात् अपनी झूठी प्रणति द्वारा हमारी प्रार्थना मत कर। ओ मधुप! तुम्हारे अनुरूप ही तुम्हारे स्वामी भी हैं। तुम दोनों समान ही हो। कहीं भी एक स्थान पर तुम्हारी प्रीति नहीं टिकती। तुम भी अनेक पुष्पों पर मँडराते हो। श्रीकृष्ण को चाहिए कि वे मथुरा की मानिनियों को ही मनाया करें। उनका यह स्त्री-कुच-कुंकुम-युक्त कृपा-प्रसाद यदुवंशियों की सभा में तो सर्वथा हँसी के ही योग्य होगा।

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा
ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥२॥

ओ भौंरे! जिस प्रकार तुम रस पीकर पुष्पों को छोड़कर चले जाते हो, वैसे ही श्रीकृष्ण एक बार ही अपनी मोहक अधर-सुधा का पान कराकर जल्दी छोड़ गए। न जाने कैसे अत्यन्त चतुर लक्ष्मीजी उस कृतघ्न की चरण-सेवा करती हैं! बड़ा

वितर्क है यह ! या तो नारद-आदि द्वारा कहे गए प्रशंसात्मक वचनों से आकर्षित होकर या श्रीकृष्ण की चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर लक्ष्मीजी उनकी सुश्रूषा करती हैं, परन्तु हम लक्ष्मीजी की तरह अविचक्षण (सामान्य) नहीं हैं।

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूना-
मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम्।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसंगः
क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ।।३।।

अरे ओ छः चरणों वाले भ्रमर ! श्रीकृष्ण के कपट-गुण के संबंध में हमारा बहुत पुराना अनुभव है। फिर घर-बार आदि से हम रहित हो चुकी हैं। हमारे सामने यदुपतियों के अधिपति श्रीकृष्ण के गुणों का इतना अधिक गान क्यों करते हो ? इससे तुम्हें क्या लाभ होगा ? तुम अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण की प्यारी मथुरावासिनी सखियों के समक्ष जाकर ही श्रीहरि का प्रसंग सुनाओ, क्योंकि वे अब श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय लगती हैं। उनके हृदय की पीड़ा उन्होंने मिटा दी है। वे ही तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगी। हम तो स्वयं विरह के दुःख से पीड़ित हैं। अतः तुम्हें क्या दे सकती हैं ?

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद् दुरापाः
कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥४॥

उनकी कपट-भरी मुस्कान और भोगादि-सूचक भ्रूविलास द्वारा वश में न हो जाय, ऐसी कोई स्त्री सम्पूर्ण जगत् में, स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में नहीं है। लक्ष्मीजी भी हमारे श्याम की चरण-धूलि के लिए लालायित रहती हैं। ऐसी दशा में हमारी इच्छा श्रीकृष्ण क्यों करेंगे ? परन्तु हे मधुप ! तुम्हें उनसे कह देना चाहिए कि अपने यश-विस्तार के लिए ही उन्होंने हमें अंगीकृत किया है। उनका नाम उत्तम श्लोक है, वह तभी सार्थक होगा, जब कि वह हम-जैसी दीनाओं पर ध्यान दें।

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन् ॥५॥

अरे भ्रमर ! धोखे से अपने सिर पर रखे हुए मेरे पैरों को छोड़ दे। जान पड़ता है, तू श्रीकृष्ण से ही यह सीखकर यहाँ

आया है कि कैसे अनुनय-विनय और खुशामद करके दूत को, रूठे हुए को मनाना चाहिए। प्रार्थना करने में परम चतुर मधुप! तुम्हारे छल-कपट को हम जानती हैं। श्रीकृष्ण की तरह तुम भी अविश्वसनीय हो, क्योंकि उनके साथ जो उपकार किया जाता है, उसका भी उन्हें ध्यान नहीं है, इसलिए वे कृतघ्न और चंचल-चित्त हैं। हमने तो प्यारे श्याम के लिए ही अपने पति-पुत्र को, धर्मसाध्य स्वर्ग को और लोक के सुखों को त्याग दिया है। फिर भी वे हमें व्रज में छोड़कर चले गए। क्या ऐसे कृतघ्नी से फिर सन्धि करना उचित है? क्या हमारी उनसे सन्धि साध्य होगी?

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधेऽलुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वांक्षवद् यस्-
तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः॥६॥

प्यारे मधुप! पूर्वजन्मों में भी उनका ऐसा ही स्वभाव रहा है या सभी श्यामवर्ण वाले निष्ठुर होते ही हैं? त्रेता युग में यही श्रीराम थे, तो इन्होंने कपिराज बाली को वधिक की भाँति धोखे से वृक्ष की ओट से मारा था। क्या यह अलुब्धधर्मा है, क्योंकि लुब्धक तो मांस-भक्षण की कामना से ही वध्य को मारता है,

परन्तु इन्होंने तो बिना किसी प्रयोजन के निर्दोष बाली का प्राण हरण किया था। काम के वशीभूत होकर जब शूर्पणखा इनके पास आयी तो उस बेचारी के कान-नाक काटकर उसे ही विकृत कर दिया था। वामन का अवतार लेकर दैत्येन्द्र बलि से पूजा करवाकर उसे पाताल में डाल दिया था। जैसे कौआ कुछ खाकर भी देने वाले स्वामी को घेर लेता है, उसी प्रकार आप वामन से लम्बे नाथ बन गए। इसलिए श्यामवर्णवाले उस श्याम की मैत्री से अब हमें कुछ प्रयोजन नहीं है, फिर भी श्याम के गुणानुवाद का त्याग करना तो हमारे लिए सर्वथा ही अशक्य है।

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इव विहंगा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥७॥

अरे भ्रमर! हमारे श्रीकृष्ण की कथा भी त्रिवर्ग (धर्म-अर्थ-काम) रूपी लता का समूल उन्मूलन करनेवाली है। उनकी कथा से केवल हम ही विक्षिप्त नहीं हैं, बहुत-से और भी लोग उसे सुन-सुनकर ही विक्षिप्त हो जाते हैं, क्योंकि उनकी लीला परम आनन्ददायक है, इसलिए कानों को अमृत-रूप लगती है।

जिस मानव ने श्याम की कथा-सुधा की एक बूंद का भी अपने जीवन में एक बार पान कर लिया, उसके द्वन्द्व सहज ही नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् पति सुनता है तो पत्नी की आसक्ति छोड़ देता है; पत्नी सुनती है तो पति की आसक्ति त्याग देती है; पिता सुनता है तो पुत्र का और पुत्र सुनता है तो पिता का मोह छोड़ देता है। वे दुःखमय गृहस्थी को छोड़ अकिंचन होकर पक्षी की तरह इस लोक में जीवन-याचना के लिए भिक्षाटन करते हैं। वास्तव में वे सारासार समझकर परमहंस-मार्ग का अनुगमन करते हैं। परमपुरुषार्थ-रूप होने से श्रीकृष्ण की कथा का त्याग करना तो उनके लिए भी कठिन है।

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः।
ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-
स्मररुज उपमन्त्रिन् भाण्यतामन्यवार्ता॥८॥

अरे भ्रमर! जैसे कृष्णसार मृग की भोली-भाली पत्नियाँ व्याध के मधुर गान को सुनकर मोहित हो उसके पास आ जाती हैं और फिर वह व्याध उन्हें बाण से मार लेता है, ऐसी दशा में वे बेचारी बाण-वेधादि दुःख को ही देखती हैं। वैसे ही श्रीकृष्ण

ने 'न मयोदितपूर्वं वा अनृतम्' (मैंने पहले कभी असत्य नहीं कहा)—यह वाक्य हमसे यमुना के किनारे स्नान के समय कहा था और 'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां' (हे गोपियो, मैं तुम्हारे प्रेम के सामने ब्रह्मा के बराबर देव-आयु प्राप्त करके भी तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता)—ऐसा द्वितीय वचन हमारे रासोत्सव-फल-काल के समय कहा था। उनकी कपट-युक्त वाणी को हमने सत्य मान लिया और उनके नख-स्पर्श से उत्पन्न तीव्र काम-पीड़ा का हम बार-बार अनुभव करती रहीं। इसलिए अरे भौंरे ! उनकी बात दुःखदायक होने से इस प्रसंग को छोड़ अब तुम कोई और बात करो।

[इतने में भ्रमर कुछ दूर जाकर फिर लौटकर राधाजी के चरणों की ओर आ गया।]

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं
वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग !
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं
सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥२०॥

हे भ्रमर ! क्या हमारे प्रिय श्याम ने फिर तुम्हें यहाँ भेज दिया ? मेरे वाक्य-शरों से ताड़ित होकर भी तुम फिर यहाँ

आ गए ? तब तो तुम हमारे माननीय हो। कहो, हमसे तुम क्या प्राप्त करना चाहते हो ? माँगो ! या तुम हमें वहाँ, जहाँ श्रीकृष्ण हैं, ले जाना चाहते हो ? किंतु कैसे ले जा सकते हो, क्योंकि उनके हृदय पर तो निरन्तर लक्ष्मीजी निवास करती हैं ? हे सौम्य ! वे अब प्रियतमा का स्थान प्राप्त कर चुकी हैं।

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते
स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते
भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥१०॥

हे सौम्य भ्रमर ! श्रीकृष्ण उपनयन-संस्कार के बाद विद्याध्ययन करने के लिए गये हैं, ऐसा हमने सुना है। कहो, गुरु-गृह से आकर इस समय वे मथुरा में सकुशल तो हैं ? क्या वे अपने माता-पिता—श्रीनन्द और यशोदाजी—तथा संबंधियों की कभी याद करते हैं ? क्या कभी हम दासियों की भी प्रसंगवश चर्चा चलाते हैं ?

[ऐसा पूछकर गोपियाँ इच्छा करती हैं कि अगरु-चन्दन के समान सुगन्ध वाले श्रीकृष्ण अपना वरद हस्त कभी उनके सिर पर भी रखें।]

५ / उद्धव-गीत

वृन्दावन में गोपी-उद्धव-समागम सत्संग-स्थल 'ज्ञान-गूदड़ी' के नाम से आज भी प्रसिद्ध है। वहाँ उद्धवजी के आत्मज्ञान-सम्बन्धी उपदेश को व्रजांगनाएँ अनुपयुक्त जानकर और मथुरा की ओर अभिमुख होकर श्रीकृष्ण-विरह में जब उच्च स्वर से "हे नाथ! हे व्रजनाथ! हे रमानाथ! दुःख-समुद्र में मग्न गोकुल-वासी जनों का जल्दी उद्धार कीजिये!" कहकर रोने लग जाती हैं, उस समय गोपियों की भगवान् के प्रति अनन्य प्रीति को देख-कर प्रेमोद्रेक से आकुल-व्याकुल हो उद्धवजी ने गोपियों के प्रति जो वचन पाँच श्लोकों में कहे थे, उन्हें 'उद्धव-गीत' कहा जाता है। आरम्भ से पूर्व एक श्लोक में और अन्त के एक श्लोक में वह गोपियों की चरण-रज को क्रमशः प्रणाम करते हुए अपनी वाणी को विराम देते हैं। इन दो श्लोकों को मिलाकर ७ श्लोक इस गीत में हैं, जो श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ४७ वें अध्याय में ५७ से ६३ तक की संख्या वाले हैं।

दृट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम्।
उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥१॥

श्रीकृष्ण के प्रेम में विकल-विह्वल गोपियों के ऐसी मन की कातर अवस्था को देखकर श्री उद्धव बड़े स्नेह से गोपियों को प्रणाम करके बोले :

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ।।२।।

समस्त जड़-चेतन-रूपी सृष्टि के अधिष्ठाता, सर्वात्मा, गौओं के स्वामी श्रीकृष्ण से प्रेम करनेवाली व्रजगोपियों का इस भूमि में जन्म लेना सफल है। शान्त-दास्य-सख्य-वात्सल्य आदि गुणों से संयुक्त और सर्वोत्तम माधुर्य-मय इस गोपी-भाव की प्राप्ति के लिए, संसार के भय से भयभीत, मुक्ति की इच्छा वाले आत्मज्ञानी मुनि तथा हम-जैसे भक्त भी कामना करते हैं।

जिस भाग्यशाली जीव का भगवान् की कथा में अनुराग उत्पन्न हो गया है, उसे माता-पिता की, श्रेष्ठ कुल की, उपनयन-संस्कार तथा यज्ञदीक्षादि इन तीन द्विजोचित संस्कारों की भी आवश्यकता नहीं रह जाती है। या भक्तिहीन जन्म पाने से भी उनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ?

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥३॥

प्रथम तो स्त्री-जाति अपवित्रताओं के कारण जन्म से ही दूषित है, फिर स्थान से दूषित है, यानी वनचरी होने से सत्संग-रहित है। फिर स्त्री-जाति काम-संकल्पवती होने से लौकिक और शास्त्रीय दृष्टि से भी व्यभिचार-बोधक है, (कामश्चाष्ट-गुणः स्मृतः) यहाँ साधारण भाषा में स्त्री-स्वभाव-बोधक रूप में 'व्यभिचार' शब्द का जो विशेषण है, वह भगवत्प्रेयसी गोपियों के लिए नहीं समझना चाहिए) फिर इन भाग्यवती गोपियों और इनके श्रीकृष्ण में निश्चल प्रेम का कहना ही क्या ! इन्होंने असम्भावित को सम्भावित कर दिया। 'कर्तुमकर्तुमन्यथा' करने में सर्वप्रथम ईश्वर के प्रभाव को विना जाने भजने वाले व्यक्ति को भी वे श्रेय फल ही प्रदान करते हैं। जैसे किसी जीव ने अमृत के गुण, प्रभाव और धर्मादि को न जानते हुए भी कदाचिद् अमृत का पान कर लिया हो, तो वह उसे आरोग्य और अमरत्व ही प्रदान करेगा। अग्नि को आप चाहे जानकर स्पर्श करें या अज्ञात-अवस्था में छू लें, वह तो जला ही देगी। यह वस्तु-शक्ति का प्रभाव है। इसलिए ईश्वर-भक्ति में न जाति कारण है, न आचार या ज्ञान ही कारण है। वहाँ तो केवल भक्ति ही सर्वोपरि है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड-गृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ।।४।।

अत्यन्त अपूर्व प्रेमानुग्रहरूप कृपा-प्रसाद का जैसा आविर्भाव गोपियों में रास-क्रीडा के समय अपने विशाल सुकोमल भुजदण्डों से उनके कण्ठों का आलिंगन कर, उनकी आशाओं को पूर्ण करने में हुआ, वैसा प्रेम-प्रसाद कमल-जैसी कान्ति और गन्ध-गुणवाली स्वर्ग की अप्सराओं तथा भगवान् श्रीविष्णु के वक्षःस्थल पर विराजमान श्रीलक्ष्मीजी को भी प्राप्त नहीं हो सका। इसका कारण यह है कि लक्ष्मीजी में तदीयभाव है, अर्थात् मैं तुम्हारी दासी हूँ। अपने को भगवान् की सेविका मानते समय लक्ष्मीजी के हृदय में यह संकोच या भय रहता है कि कहीं उनसे भगवान् के प्रति कोई भूल न हो जाय। इससे विचित्र व्रजवनिताओं में मदीयभाव विद्यमान है। वे कहती हैं, श्रीकृष्ण मेरे हैं, हमारे हैं, हमारे हैं ! अतः यहाँ आकर महाभाव पूर्ण विकसित है।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।५।।

मेरे लिए यह परम सौभाग्य होगा कि वृन्दावन में गोपियों की चरण-रज का सेवन करने वाली झाड़ी, लता या औषधियों के बीच मैं कुछ भी बन जाऊँ, जिससे मुझे भी व्रजगोपियों की पवित्र रज मिलती रहेगी। मैं भी कृतकृत्य हो जाऊँगा। इन गोपियों ने पतिपुत्रादि स्वजन की स्नेह-शृंखला को सहज ही तोड़कर अपने संबंधियों आदि की मान-मर्यादा को छोड़कर वेद मंत्रों के द्वारा भी अप्राप्य श्रीकृष्ण के साथ तन्मय होकर उन पर प्रेम प्राप्त कर लिया है। अर्थात् श्रुति भी 'स्त्रिय उरगेन्द्र भोग भुजदण्ड विषाक्त धियः' कहकर गोपी-भाव की प्राप्ति के लिए लालायित रहती हैं। वेद भी जिन्हें जान नहीं सके, उन श्रीकृष्ण के साथ ये ऐक्य-भाव को प्राप्त कर चुकी हैं। धन्य हैं व्रजगोपियाँ !

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
योगेश्वरैरपि पदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥६॥

जिन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों को कमलासन पर विराजित लक्ष्मीजी नित्य पूजती हैं, प्राप्तैश्वर्य, पूर्णकाम,

पद्मपत्र से समुत्पन्न, लोकपितामह, चतुरानन वाले ब्रह्मा भी जिन पादपद्मों की सेवा करते हैं, सिद्ध योगेश्वर भी जिन कृष्ण-चरण-सरसिजों का अपने मन में सतत चिन्तन करते रहते हैं, श्याम के उन्हीं दिव्य पद-पद्मों को रासोत्सव के समय गोपियाँ अपने हृदय में स्थापित और आलिंगित कर काम-सन्ताप को छोड़ देती हैं। इसलिए ये सब धन्य हैं !

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥७॥

श्रीकृष्ण-कथा से संबंधित, उत्कर्ष के सहित जिन पूज्य गोपियों का चरित्र 'भूलोकादि' तीनों लोकों को और उसका कीर्तन सुनने वाले मनुष्यों को पवित्र करता है, उन श्रीनन्द व्रज में रहने वाली इन गोपियों की चरण-रज की मैं बार-बार वन्दना करता हूँ !

'मंडल' का नीति-अध्यात्म साहित्य

□□

- भगवद्‌गीता
- भज गोविन्दम् स्तोत्र
- अनासक्ति योग
- विष्णु सहस्रनाम
- उपनिषदों का बोध
- उपनिषद
- वेदान्त
- भागवत-कथा
- महाभारत-सार
- रामकृष्ण उपनिषद
- सुभाषित सप्तशती
- महाभारत-कथा
- दशरथनंदन श्रीराम
- रामायण के पात्र (२ भाग)
- महाभारत के पात्र (११ भाग)
- श्रीमद्‌भागवत के पंचगीत

□□